अध्याय चवालीसवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नमः॥

"हे सिद्धारूढ़जी, आप शुद्ध ब्रह्म होकर, तत्वज्ञान की मूर्तिमत्ता हैं; आप भक्तों के दुख, पीड़ा तथा संकट हरते हैं, आप की मनोहर तथा अगाध महिमा बयान करने के लिए, मुझ जैसे सेवक को आप ही प्रेरणा दीजिए।"

हे श्री सिद्धारूढ़जी, आप कृपासागर होते हुए भक्तों के प्रति उदार, अभक्तों के प्रति भी करुणानिधान तथा मुमुक्षुओं को ज्ञान दान करने वाले हैं। आप जैसे महान संतों को प्रणाम करके मनुष्य ने दिन का शुभारंभ करना चाहिए ताकि सारे संकटों का विनाश होकर अपने आप ही कार्य सिद्धि होती है। ऐसे महान साधुओं के चिंतन से इस जगत में भक्तों को सारी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनके दर्शन करने से जगत में कीर्ति प्राप्त होती है तथा उनको प्रणाम करने से सारी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। आप धन चाहते हैं तो सिद्धजी के चरण छूकर प्रणाम करें तथा जो सिद्धजी की भक्ति करेगा उसकी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। ज्ञान को कहीं भी स्थान न मिलने के कारण, सिद्धारूढ़जी ने उसे स्वयं आश्रय दिया, इसीलिए जो ज्ञान प्राप्ति की कामना करते हैं, उन्हें भक्तिभाव से गुरुचरणों में शरण लेनी चाहिए। जो ज्ञान रत्नों का सागर हैं, जहाँ सारे पवित्र तीर्थ एकत्रित होने से निर्माण होने वाली पवित्रता है, ऐसे सतगुरुजी की जीवनी अब सुनिए।

अस्तु। सभी भक्तों में प्रमुख, सभी संतों का अगुआ, सभी ज्ञानी व्यक्तियों में शिरोमणि तथा सद्‌गुणों की खान होने वाला तम्ममण्णशास्त्री नाम का एक महापुरुष था। उनका मूल स्थान नवलगुंद होकर हुबली में रहकर लोगों में परमार्थ के प्रति प्रेम जागृत करने के लिए पुराण कथाओं पर प्रवचन करके वे असंख्य लोगों को उद्धरते थे। तम्ममण्णशास्त्री ने भक्तों को ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न होने के लिए पुराण कथाएँ सुनने का एक श्रेष्ठ मार्ग दिखाया था। जिसने स्वयं की सारी विषयोपभोगों की वासनाएँ जला दी थी, जिसका वैराग्य असीम था, ऐसा महापुरुष तम्ममण्णशास्त्री निरभिमानी था; फिर भी लोगों के बीच रहते हुए स्वयं की विरक्ति की भावना कम न हो, इसलिए एकबार वे सिद्धनाथजी के पास आकर उनके चरण छूकर बोले, "हे सिद्धारूढ़जी, आप ज्ञान

की मूर्तिमत्ता होकर मुमुक्षुओं के आश्रयदाता हैं। आप के चरणों में आश्रय पाकर मुमुक्षु अक्षय मोक्ष की प्राप्ति करते हैं, ऐसी आप की अगाध महिमा सुनकर मैं आप की शरण में आया हूँ। जो इस जगत में पूर्ण रूप से विरक्त हो चुके हैं, उनका आपके चरणों के सिवाय अन्य कोई स्थान ही नहीं है। इस प्रपंच में अल्प भी सुख नहीं है, ऐसे प्रपंच में रहकर मैं झुलस गया हूँ; ऐसी स्थिति होने के बावजूद भी इस प्रपंच से मनुष्य को छुटकारा नहीं मिलता, इसीलिए आप मेरा उद्धार करें।" उनके ऐसे करुण शब्द सुनकर दयाघन सिद्धजी द्रव गए और अमृततुल्य शब्दों में तम्मण्णशास्त्री से बोले, "अरे! तम्मण्णशास्त्री, इस पृथ्वी पर तुम वैराग्य की मूर्तिमत्ता हो। हालाँकि, बाहरी ओर से देखा जाए तो तुमने साधारण मनुष्य का शरीर धारण किया है, परंतु अंतर्भाव से पूर्णत: तुम ज्ञानी व्यक्ति के समान ही व्यवहार कर रहे हो। धारण किए हुए इस मनुष्य के शरीर से योग्य व्यवहार हो, अन्य जीव योनिजों का उद्धार हो इसलिए उन्हें मार्गदर्शन करने हेतु वैराग्य अत्यंत आवश्यक होता है। प्रभु श्रीरामचंद्रजी ने वसिष्ठ ऋषि को गुरु माना तथा कृष्णावतार में श्रीकृष्ण भगवान के सांदीपनी ऋषि गुरु थे; मनुष्य चाहे कितना भी महान क्यों न हो, उसे गुरु की आवश्यकता होती ही है यहीं बात लोगों को समझाने का उद्देश्य इन घटनाओं में था। लोगों के उद्धार के लिए तुम वैराग्य पूर्ण व्यवहार कर रहे हो, यह देखकर मैं बहुत आनंदित हो गया हूँ। इस से अन्य कोई उपदेश हो ही नहीं सकता। अब जैसे मैं कहता हूँ, वैसे तुम करो। गोंदवले गाँव में ब्रह्मचैतन्यजी नाम के एक महान संत हैं, जिनकी महिमा इस पृथ्वी पर फैली है, तुम उनकी शरण में जाओ। तुम ऐसा मत समझो की मैंने तुम्हारा एक शिष्य के रूप में अस्वीकार किया है; मैंने तुम्हें जो कुछ भी कहा है, समझ लो की वह सब लोककल्याण के लिए ही है। उसी प्रकार, ऐसा कोई कभी भी न समझें की वह पूर्ण रूप से ज्ञानी होकर जगत के हर एक जीव योनिज को उपदेश करने के काबिल है। इस बात को भगवान ने भगवदगीता में 'अज्ञानव्रत' कहा है और मुझे भी इस व्रत का पालन करना होगा।" ऐसे उनके अमृततुल्य शब्द सुनकर शास्त्रीजी मन ही मन आनंदित हुए और सद्गुरुजी के चरणों में माथा रखकर उनका आशिर्वाद लेकर वे लौटे।

उसके पश्चात हरिभक्त तम्मण्णशास्त्री गोंदवले तीर्थ जाकर ब्रह्मचैतन्यजी से मिले और उन्होंने दीन होकर उन्हें प्रणाम किया। अपने बारे में पूरी जानकारी देने के उपरांत उन्होने कहा, "हे दयालु, मैं आप की शरण में आया हूँ, आप को कृपा करके मुझ जैसे दीन को सँभालना होगा। किस में मेरा भला है, यह मैं स्वयं न जानने के कारण मैं आप की शरण में आया हूँ, इसलिए हे दीनदयाल, मेरा भला किस में है यह आप मुझे बताईए।" उनके ये करूणामय शब्द सुनकर ब्रहमचैतन्यजी ने उनकी योग्यता समझ ली और स्वयं करुणाकर होने वाले उन्होंने कहा, "तुम हुबली के रहने वाले हो, जहाँ संत सिद्धारूढ़जी का निवास हैं और उन्होंने तुम्हें यहाँ भेजा हैं; इसलिए अब तुम 'श्रीराम जय राम जय जय राम,' इस मंत्र का तेरह लक्ष जाप करो, जिससे तुम्हारा सारा भव भ्रम (सांसारिक माया) दूर होगा।" उसके पश्चात शास्त्रीजी ने तुरंत एकांत में बैठकर वह मंत्र जपना आरंभ किया; तेरह लक्ष बार मंत्र जपने के पश्चात साक्षात प्रभु श्रीरामचंद्र ने उन्हें दर्शन दिए। कोटी सूर्यों के इकट्ठा होने से जो प्रभा फैलेगी ऐसी अवर्णनीय दिव्य प्रभा प्रभु श्रीरामचंद्र के चारो ओर फैली थी, प्रभु के दर्शन होते ही तम्मण्णशास्त्रीजी देहभान खोकर समाधि स्थिति प्राप्त कर गए। श्रीरामजी के दर्शन होते ही पल भर के लिए वे देहभान खो बैठे, हवास सँभलने के उपरांत उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की, की ऐसा ही दर्शन उन्हें प्रतिदिन हो तथा उनके मन में दर्शन के सिवाय अन्य कोई भी मनोकामना नहीं है। "मेरा नामस्मरण करने से मेरे दर्शन होंगे," ऐसा कहकर उन्हें आश्वस्त करके प्रभु श्रीराम शास्त्रीजी का प्रणाम स्वीकारकर अंतर्धान हुए। सतगुरुजी की कृपा से ही यह साक्षात्कार हुआ है, यह जानकर उन्होंने सतगुरुजी के चरणों में माथा रखा। उस समय उनके हृदय में असीम प्रेम उमड़ आकर आँखों से अविरत आँसू बह रहे थे। उसपर सतगुरु ब्रह्मचैतन्यजी ने कहा, "तुम्हे सच्चिदानंद सिद्धारूढ़जी ने मेरे पास भेजने के कारण, आज से मैंने तुम्हारा नाम 'सच्चिदानंद' रखा है। इसके पश्चात फिर से लौटकर तुम लोगों का उद्धार करो।" उसपर सतगुरुजी की आज्ञा लेकर शास्त्रीजी हुबली लौटे और सिद्धाश्रम जाकर उन्होंने अनन्य भक्तिभाव से सिद्धजी के चरणों में माथा रखा। उन्होंने कहा, "हे दयालु, आप की आज्ञा से गोंदवले गाँव जाने के उपरांत, वहाँ सतगुरुजी ने कृपा करके मुझे तेरह

अक्षरों वाला मंत्र जपने की दीक्षा दी, जिसे जपकर से मैं कृतकृत्य हो गया| चारो ओर आप ही के रूप हैं, ऐसी मुझे प्रतीति हुई है। इसलिए, मेरा अहंकार पूर्ण रूप से नष्ट होकर निरभिमानी होने की तरकीब आप मुझे बताईए।" तब हँसकर सिद्धनाथजी ने कहा, "अब तुम जनकल्याण का कार्य करो। घर घर जाकर भिक्षा माँगो तथा मिले हुए अन्न या परचून से अन्नदान करो।" उसपर शास्त्रीजी ने कहा, "भिक्षा माँगकर सारी अन्न सामग्री इकट्ठा करके श्री दासनवमी का समारोह मनाना आरंभ कर दूँगा और उस समय आप की आज्ञानुसार अन्नदान करुँगा।" उसपर सतगुरुजी की आज्ञा लेकर उसने एक बहुत बड़ा मँडवा खड़ा किया. वहाँ एक सप्ताह दिनरात भजन हो रहा था। दूर दूर के राज्यों से कीर्तनिये आकर वहाँ कीर्तन करके जाते थे तथा असंख्य लोग ध्यान से कीर्तन सुनते थे। कीर्तन का समारोह समाप्त होने के पश्चात आठवे दिन जेवनार (समाराधना) के लिए सभी लोगों को आमंत्रित किया गया था। दस हजार लोगों के भोजन का प्रबंध किया गया था। पहली दो पंगतियों में कुल मिलाकर आठ हजार लोग भोजन करके तृप्त हो गये। लोग भोजन करते समय स्वयं सिद्धनाथजी आकर उस आनंद पूर्ण समारोह को देखकर मन ही मन संतुष्ट हुए और बोले, "तम्मण्णशास्त्री तुम धन्य हो। भिक्षा माँगकर इकट्ठा की हुई अन्नसामग्री से अन्नदान करके तुमने इस जगत में कीर्ति प्राप्त की है। तुम्हारे मन का निर्धार प्रशंसनीय है।" तब शाश्त्रीजी ने कहा, "सतगुरुनाथजी, वास्तव में यह आप ही की करनी है। हालाँकि आप ने मुझ जैसे दीन मनुष्य को निमित्तकारण बनाया भी हो तो भी सारी घटनाओं का आप ही कर्ता हैं।" इतने में और आठ हजार लोग भोजन के लिए पधारे। फिर से आठ हजार लोग भोजन के लिए आए हुए देखकर शास्त्रीजी चिंतित हो गए। केवल दो हजार लोगों का खाना ही बचा हुआ था; दो हजार से अधिक लोगों के लिए फिर से खाना बनाना भी संभव नहीं था, इसलिए क्या करना चाहिए इस सोच में शास्त्रीजी पड़ गए। तब उन्होंने कहा, "हे सतगुरुनाथजी, आप के इस समारोह का कार्य अब आप ही सँभालिए।" ऐसा कहकर वे सिद्धारूढ़जी को रसोईघर ले गए। उस समय सतगुरुजी ने पकाए हुए रसोई की ओर कृपादृष्टि से एकबार देखा और कहा, "अब तत्काल लोगों को पंगतियों में बिठाकर भोजन परोसना आरंभ कर दो। अब कोई भी चिंता न करें

तथा मन ही मन समर्थ सतगुरुजी का स्मरण करें।" ये उनकी बाते सुनकर शास्त्रीजी अत्यंत आनंदित हुए और उन्होंने कहा, "अच्छा हुआ। सतगुरुजी ने सारी जिम्मेदारी स्वयं ले ली। मेरी चिंता पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी। लोगों, चलिए चटपट पंगति में बैठे जनों को भोजन परोसना आरंभ कीजिए। स्वयं सतगुरुजी, हमारे समर्थक यहाँ उपस्थित हैं।" पंगतियों में बैठे लोगों को भोजन परोसना आरंभ हुआ, सभी को अनुरोध करके भरपूर भोजन परोसा गया। चावल, सब्जी आदि बार बार परोसे गए। इतना कुछ परोसने के पश्चात अभी भी बहुत भोजन बचा हुआ था। सभी लोग भोजन समाप्त करके उठने के पश्चात रसोईघर में खाना शेष बचा था। सभी परोसने वालों ने भोजन करने के उपरांत खाना खत्म हुआ। इस अद्‌भुत चमत्कार को देखकर लोग आश्चर्य से दंग रह गए। शास्त्रीजी अत्यंत आनंदित हुए तथा उन्होंने सतगुरु सिद्धरूढजी का स्तवन किया, जिनकी कृपा से भक्तगण हमेशा निश्चिन्त होते हैं। उसके पश्चात सिद्धनाथजी सिद्धाश्रम लौटे तथा सभी भक्त भी अपने अपने घर लौटे। अस्तु। तम्मण्णशास्त्रीजी प्रतिदिन जनोद्धार कैसे होगा इसी की चिंता करते रहते थे। एकबार वे सतगुरु सिद्धारूढ़जी के पास आए और बोले, "गुरुवर्यजी, अनेक लोगों से नामस्मरण करवाने की एक तरकीब मुझे सूझी है। तरकीब आसान ही है। मैंने तेरह कोटी रामनाम का जाप पूरा करने का संकल्प किया है, अगर हर एक भक्त प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा रामनाम जप लें, तो एक वर्ष के अंत तक तेरह कोटी जाप पूरा हो जाएगा।" जनोद्धार की यह तरकीब सुनकर सतगुरुजी मन ही मन हर्षित हुए। उसपर शास्त्रीजी ने सतगुरुजी आज्ञा लेकर सभी भक्तों से कहा, "हे भक्तगण, प्रतिदिन आप सभी तेरह अक्षरों वाला यह तारक मंत्र आप के शक्तिनुसार जपिए तथा सभी लोगों का जाप मिलाकर तेरह कोटी जाप पूरा कीजिए।" उसपर जो भक्त जाप करने के लिए तैयार थे उन्होंने अपने अपने नाम शास्त्रीजी को बताए, जिन्होंने वे सारे नाम लिख लिए। प्रतिदिन सुबह भक्तगण पिछले दिन पूर्ण किए हुए जप की संख्या तम्मण्णशास्त्रीजी को बताते थे तथा वे सारी जपसंख्या लिख लेते थे। प्रत्येक भक्त आदर पूर्वक जपनी हाथ में लेकर समय व्यर्थ गँवाए बगैर जाप करता था, इस प्रकार दिन पर दिन जपसंख्या बढ़ने लगी। हालाँकि छह महीनों के पश्चात सभी भक्तों की कुल

मिलाकर जपसंख्या तेरह कोटी पूर्ण हो गयी, फिर भी किसी ने जाप करना बंद नहीं किया। उसपर फिर एकबार तेरह कोटी जपसंख्या पूर्ण करने का संकल्प किया गया, क्योंकि जाप करते समय भक्तों को होने वाली प्रेम की अनुभूति बढ़ रही थी। महिलाएँ, मर्द तथा छोटे बच्चों के हाथ में जपनी शोभा दे रही थी और सभी समय व्यर्थ गँवाए बगैर जप कर रहे थे। सभी को स्पष्ट रूप से नामस्मरण करने की आदत हो गयी, क्योंकि नामस्मरण के प्रति उनके मन में अत्यंत आस्था बनी तथा स्थिर हो गयी थी। इस प्रकार, तम्मण्णशास्त्रीजी हमेशा लोकोद्धार कर रहे थे परंतु स्वयं उसका श्रेय न लेते हुए, सब कुछ सिद्धारूढ़जी की कृपा से ही हो रहा है, ऐसा ही कह रहे थे। सिद्धसतगुरुजी के प्रति प्रेम व्यक्त करके वे लोगों को उपदेश करते थे। उनका पुराण कथा पर प्रवचन सुनने के लिए अनगिनत भक्त उपस्थित रहते थे। सतगुरुजी स्वयं एक प्रेम सागर हैं तथा उस सागर में एक से एक अपनी दिव्य प्रभा से चमकने वाले भक्त रूपी रत्न हैं; जिनकी रक्षा सतगुरुजी करते हैं। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह चवालीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥